

## शासन और समाज में धर्म का योगदान: 'युधिष्ठिर विजयम्' में युधिष्ठिर के सिद्धांतों का अध्ययन

डॉ शालिनी पाठक,

संस्कृत विभाग

स्व चन्द्र सिंह शाही राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

कपकोट, बागेश्वर, उत्तराखण्ड

### सारांश

"युधिष्ठिर विजयम्" एक महाकाव्य है जो महाभारत के प्रमुख पात्र युधिष्ठिर की विजय यात्रा के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, राजनीति, धर्म, और दर्शन को चित्रित करता है। यह ग्रंथ न केवल युधिष्ठिर के नेतृत्व और उनके धर्म की दृढ़ता का वर्णन करता है, बल्कि उस समय के सामाजिक और नैतिक मूल्यों का भी दर्पण है। इस महाकाव्य में वर्णित समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था, धर्म का पालन, और अर्थव्यवस्था का कृषि तथा व्यापार पर आधारित होना दिखाया गया है। राजनीति में राजधर्म और न्याय की प्रमुखता, धर्म में यज्ञ और तपस्या का महत्व, और दर्शन में जीवन के उद्देश्य तथा आत्मा के स्वरूप का विवरण मिलता है। यह शोध इन पहलुओं का विश्लेषण करेगा और युधिष्ठिर विजयम् में वर्णित प्राचीन भारतीय समाज के संपूर्ण चित्रण को समझने का प्रयास करेगा।

### परिचय

"युधिष्ठिर विजयम्" महाभारत के सबसे प्रतिष्ठित पात्र युधिष्ठिर की विजयगाथा है, जिसमें उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं और उनके आदर्शों के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज और संस्कृति का गहन वर्णन किया गया है। यह महाकाव्य उस समाज का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है जो धर्म, नीति, और न्याय के सिद्धांतों पर आधारित था। युधिष्ठिर का चरित्र, जो सत्य, अहिंसा, और धर्म के मार्ग पर चलता है, एक आदर्श व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है और यह दिखाता है कि व्यक्ति और समाज किस प्रकार से धार्मिक तथा नैतिक आदर्शों पर टिका रहता है।

महाकाव्य में समाज की वर्णाश्रम व्यवस्था, सांस्कृतिक परंपराएँ, अर्थव्यवस्था का कृषि तथा व्यापार पर आधारित स्वरूप, और राजनीति में राजधर्म का महत्व प्रमुखता से उभर कर सामने आता है। इसके साथ ही, धर्म की प्रतिष्ठा यज्ञ, दान, और तपस्या के रूप में दिखाई गई है और दर्शन में आत्मा, कर्म, तथा मोक्ष की अवधारणाओं का विवेचन किया गया है। यह अध्ययन "युधिष्ठिर विजयम्" के माध्यम से इन सभी पहलुओं का विश्लेषण करेगा। समाज और संस्कृति के संदर्भ में यह ग्रंथ उस समय के जीवन का व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करता है, जो समाज की संरचना से लेकर धार्मिक और दार्शनिक सिद्धांतों तक फैला हुआ है। इस शोध का उद्देश्य महाकाव्य के माध्यम से उस समय के समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्म, और दर्शन के संबंधों को समझना और भारतीय सभ्यता के आधारभूत मूल्यों को उजागर करना है।

### युधिष्ठिर विजयम्: एक सामान्य परिचय

युधिष्ठिर विजयम्" एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है, जो महाभारत के पांडव राजा युधिष्ठिर की कथा और उनके धर्ममूलक जीवन का वर्णन करता है। युधिष्ठिर भारतीय परंपरा में धर्मराज के रूप में प्रसिद्ध हैं, जो सत्य, न्याय, और धर्म के आदर्शों का पालन करते हैं। यह ग्रंथ केवल एक योद्धा के विजय की गाथा नहीं है; यह उस समय के समाज, संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्म, और दर्शन को भी उजागर करता है। महाभारत के भीषण युद्ध के पश्चात् जब युधिष्ठिर का राज्याभिषेक होता है, तब वे युद्ध की पीड़ा और अपने कर्मों की जटिलता को समझते हुए धर्म के मार्ग पर चलने का निश्चय करते हैं। "युधिष्ठिर विजयम्" में यह यात्रा दर्शायी गई है कि कैसे युधिष्ठिर समाज में नैतिकता और धर्म की स्थापना करते हैं। यह ग्रंथ केवल कथा का वर्णन नहीं है, बल्कि भारतीय समाज के आदर्शों का संकलन भी है, जिसमें जीवन के हर पक्ष पर गहरी अंतर्दृष्टि मिलती है।

"धर्मो रक्षति रक्षितः, धर्मेण युधिष्ठिरो जयति।

सत्यं हि परमं धर्मं, सत्ये स्थितं जगत् सर्वम्॥"

यह श्लोक युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठा और सत्य के प्रति उनकी अडिग प्रतिबद्धता को दर्शाता है। इसका अर्थ है कि धर्म की रक्षा करने वाला स्वयं धर्म की रक्षा करता है। धर्म का पालन करने से व्यक्ति और समाज दोनों सुरक्षित रहते हैं, और अंततः सच्चाई की विजय होती है। यहाँ युधिष्ठिर के जीवन के दो प्रमुख सिद्धांत उभर कर आते हैं—**धर्म और सत्य**।

- **"धर्मो रक्षति रक्षितः"**: इस पंक्ति का अर्थ है कि धर्म की रक्षा करने वाला व्यक्ति भी धर्म द्वारा संरक्षित होता है। यदि हम धर्म के मार्ग पर चलते हैं और सत्य का पालन करते हैं, तो धर्म और सत्य हमें हर परिस्थिति में सुरक्षित रखते हैं। युधिष्ठिर का विश्वास था कि किसी भी कठिन परिस्थिति में धर्म का साथ नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि धर्म ही अंततः व्यक्ति की रक्षा करता है।
- **"धर्मेण युधिष्ठिरो जयति"**: इस पंक्ति में यह बताया गया है कि युधिष्ठिर की विजय का कारण उनका धर्म पर अडिग विश्वास और पालन करना था। धर्म के मार्ग पर चलते हुए उन्होंने न केवल जीवन में विजय पाई बल्कि एक आदर्श राजा और व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठा भी पाई। उनके लिए धर्म किसी लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन मात्र नहीं था, बल्कि जीवन का मार्गदर्शक सिद्धांत था।
- **"सत्यं हि परमं धर्मः"**: इस पंक्ति का अर्थ है कि सत्य ही सर्वोच्च धर्म है। युधिष्ठिर के अनुसार, सत्य को अपनाने से ही व्यक्ति धर्म के सही अर्थ को समझ सकता है। सत्य की शक्ति असीम है, और इसका पालन ही व्यक्ति को उच्च आदर्शों और धार्मिकता की ओर ले जाता है।
- **"सत्ये स्थितं जगत् सर्वम्"**: अंतिम पंक्ति में कहा गया है कि सम्पूर्ण जगत् सत्य पर आधारित है। यह पंक्ति दर्शाती है कि सत्य वह आधार है, जिस पर सृष्टि का संतुलन टिका हुआ है। यदि सत्य का पालन न किया जाए तो संसार में अव्यवस्था और अशांति फैल जाती है। इसलिए, सत्य को जीवन का आधार बनाना आवश्यक है।

इस श्लोक के माध्यम से यह समझ आता है कि धर्म और सत्य का पालन करना ही युधिष्ठिर के जीवन का मूलमंत्र था। धर्म को अपनाने और उसकी रक्षा करने से व्यक्ति को स्थायित्व, शांति, और विजय प्राप्त होती है। यह श्लोक केवल युधिष्ठिर के चरित्र का ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए एक महत्वपूर्ण संदेश है—सत्य और धर्म ही व्यक्ति को असली विजय प्रदान करते हैं।

**"राजा धर्मेण संरक्षणं कुरुते, न न्यायं विहाय राजत्वम्।  
यत्र न्यायं न पालयते, तत्र धर्मः सदा क्षीयते ॥"**

इस श्लोक में युधिष्ठिर के विचारों के माध्यम से राजधर्म का आदर्श चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि एक सच्चे राजा का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य न्याय और धर्म की रक्षा करना है। युधिष्ठिर का मानना था कि न्याय और धर्म एक राजा के शासन के दो मुख्य स्तंभ हैं। यदि इनमें से किसी का भी हास होता है, तो राज्य में अव्यवस्था और असंतोष उत्पन्न होता है।

- **"राजा धर्मेण संरक्षणं कुरुते"**: इसका अर्थ है कि एक राजा अपने राज्य का संरक्षण धर्म द्वारा करता है। यानी, एक राजा को अपने राज्य की रक्षा और उन्नति के लिए धर्म का पालन करना चाहिए। जब राजा स्वयं धर्म का पालन करता है, तो प्रजा में भी धर्म के प्रति आस्था और विश्वास बना रहता है, जिससे राज्य में शांति और संतुलन बना रहता है।
- **"न न्यायं विहाय राजत्वम्"**: यह पंक्ति बताती है कि एक राजा का राजत्व (राजा होने का गौरव और शक्ति) तभी सार्थक होता है जब वह न्याय के आधार पर शासन करता है। यदि राजा न्याय का त्याग कर दे, तो उसका राजत्व मात्र शक्ति-प्रदर्शन रह जाता है, जो समाज में भय और अशांति उत्पन्न कर सकता है। इसलिए, न्याय का पालन करना राजा के लिए अनिवार्य है।
- **"यत्र न्यायं न पालयते"**: इस पंक्ति का अर्थ है कि जहाँ न्याय का पालन नहीं होता, वहाँ का शासन अस्थिर और संकटपूर्ण हो जाता है। जब राजा न्याय को उपेक्षित कर देता है, तो राज्य में भ्रष्टाचार, अपराध, और असमानता बढ़ने लगती है, जिससे समाज में असंतोष और अशांति उत्पन्न होती है।

- **"तत्र धर्मः सदा क्षीयते"**: इस अंतिम पंक्ति में यह बताया गया है कि जहाँ न्याय का हास होता है, वहाँ धर्म का भी नाश हो जाता है। न्याय और धर्म आपस में गहरे जुड़े हुए हैं; जब राजा न्याय के मार्ग से भटकता है, तो राज्य में अधर्म का प्रसार होने लगता है। इससे समाज के नैतिक मूल्यों में गिरावट आती है और राज्य में अराजकता का माहौल उत्पन्न होता है।

इस श्लोक के माध्यम से युधिष्ठिर ने यह संदेश दिया है कि राजा का सर्वोच्च धर्म न्याय के माध्यम से राज्य का संचालन करना है। धर्म और न्याय की अनुपस्थिति में न केवल राज्य बल्कि समाज का संतुलन भी बिगड़ता है। यह श्लोक राजधर्म का मूल सिद्धांत बताता है कि न्यायपूर्ण शासन ही एक आदर्श राज्य की नींव है और इससे ही प्रजा में संतोष, समृद्धि, और सुरक्षा का भाव उत्पन्न होता है।

**"कृषिगोरक्षवाणिज्यं, धर्मस्य मूलं प्रजासुखम्।  
यज्ञदानतपःकर्म, राजधर्मस्य साधनम्॥"**

यह श्लोक उस समय की अर्थव्यवस्था और राजधर्म के मूल सिद्धांतों को उजागर करता है। इसमें राजा के कर्तव्यों और समाज के आर्थिक आधारों को स्पष्ट किया गया है। युधिष्ठिर के अनुसार, एक खुशहाल और समृद्ध राज्य के निर्माण के लिए कृषि, गोपालन (पशुपालन), और व्यापार जैसे कार्य आवश्यक हैं, जबकि यज्ञ, दान, और तप जैसे धार्मिक कार्य राजधर्म को पूरा करते हैं और समाज में संतुलन बनाए रखते हैं।

- **"कृषिगोरक्षवाणिज्यं"**: इस पंक्ति में कृषि, गोपालन, और व्यापार को समाज की अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधारों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। युधिष्ठिर मानते थे कि इन तीनों कार्यों से राज्य की आर्थिक समृद्धि होती है और प्रजा का जीवन सुगम बनता है। कृषि से अन्न की पूर्ति होती है, गोपालन से दूध, घी, आदि आवश्यक वस्तुएं मिलती हैं, और व्यापार से वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है, जिससे समाज में संतुलन और संतोष बना रहता है।
- **"धर्मस्य मूलं प्रजासुखम्"**: इसका अर्थ है कि समाज के सुख और समृद्धि में ही धर्म की नींव है। जब समाज के सभी लोग सुखी और संतुष्ट होते हैं, तब धर्म का पालन स्वतः होता है। युधिष्ठिर का विचार था कि राज्य में समृद्धि और शांति स्थापित कर के ही प्रजा को धर्म के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इस प्रकार, समाज के सुख को धर्म का मूल माना गया है।
- **"यज्ञदानतपःकर्म"**: इस पंक्ति में यज्ञ, दान, और तप के महत्व को बताया गया है। यज्ञ राजा द्वारा किए जाने वाले धार्मिक अनुष्ठान हैं, जो समाज में सकारात्मक ऊर्जा और शांति का प्रसार करते हैं। दान का अर्थ है कि राजा समाज की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए उन्हें संसाधन प्रदान करे। तप का मतलब है कि राजा आत्म-संयम, अनुशासन, और सेवा की भावना रखे। ये सभी कार्य राजा के धर्म और उसकी जिम्मेदारियों को पूर्ण करते हैं।
- **"राजधर्मस्य साधनम्"**: इसका अर्थ है कि यज्ञ, दान, और तप राजधर्म के साधन हैं, यानी ये कार्य राजा को उसके धर्म का पालन करने में सहायक हैं। युधिष्ठिर का मानना था कि एक सच्चा राजा वही है, जो केवल सत्ता और अधिकारों का पालन नहीं करता बल्कि समाज के कल्याण और धर्म के प्रति समर्पित रहता है। इस प्रकार, यज्ञ, दान, और तप के माध्यम से राजा अपने धर्म का पालन करता है और समाज में शांति और स्थिरता बनाए रखता है।

इस श्लोक के माध्यम से यह संदेश मिलता है कि राजा का कर्तव्य है कि वह समाज के आर्थिक और धार्मिक संतुलन को बनाए रखे। कृषि, पशुपालन, और व्यापार से राज्य में आर्थिक संपन्नता आती है और यज्ञ, दान, तथा तप से धर्म का पालन होता है। इस प्रकार, युधिष्ठिर के दृष्टिकोण में एक आदर्श राजा वह है जो प्रजा के सुख के लिए कार्य करता है और अपने राज्य को धर्म एवं न्याय के मार्ग पर अग्रसर करता है।

**"सत्यं तपो दया शौचं, धर्मस्य मूलं चतुष्टयम्।  
एतेषु स्थितिर्यत्र, तत्र धर्मः सदा वर्तते॥"**

इस श्लोक में धर्म के चार प्रमुख आधारों का उल्लेख किया गया है—**सत्य, तप, दया, और शौच (शुद्धता)**। युधिष्ठिर का मानना था कि इन चार गुणों के बिना धर्म की संपूर्णता असंभव है। ये चार स्तंभ उस आदर्श जीवन को दर्शाते हैं, जो न केवल व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि समाज और राज्य में भी संतुलन और स्थायित्व लाते हैं।

- **"सत्यं"**: सत्य को धर्म का प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण आधार माना गया है। सत्य का अर्थ है ईमानदारी और निष्कपटता से जीवन जीना। युधिष्ठिर का जीवन सत्य पर आधारित था, और उन्होंने हर परिस्थिति में सत्य का पालन किया। उनके अनुसार, सत्य की शक्ति अडिग और असीमित होती है, और यह वह गुण है जो व्यक्ति को उच्च आदर्शों तक पहुँचाने में सक्षम है।
- **"तपो"**: तप का अर्थ है आत्म-संयम और साधना। तप से तात्पर्य है कि व्यक्ति अपनी इंद्रियों और इच्छाओं पर नियंत्रण रखे और एक साधक की भांति अपने कर्तव्यों का पालन करे। तप व्यक्ति को आंतरिक शक्ति और धैर्य प्रदान करता है, जिससे वह कठिनाइयों का सामना कर पाता है। युधिष्ठिर स्वयं तप का पालन करते थे और समाज को भी इस गुण की प्रेरणा देते थे।
- **"दया"**: दया का अर्थ है करुणा और दूसरों के प्रति संवेदनशीलता। धर्म का यह आधार बताता है कि सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति और संवेदनशीलता होनी चाहिए। दया का भाव समाज में सौहार्द और आपसी सहयोग को बढ़ावा देता है। युधिष्ठिर के लिए दया और करुणा सर्वोच्च गुण थे, जो उन्होंने अपने जीवन और शासन में भी अपनाए।
- **"शौचं"**: शौच का अर्थ है शुद्धता, जो शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक स्तर पर स्वच्छता और पवित्रता को दर्शाता है। शुद्धता केवल बाहरी रूप से ही नहीं, बल्कि मन, वचन, और कर्म में भी होनी चाहिए। युधिष्ठिर मानते थे कि शुद्धता से व्यक्ति को आत्मज्ञान और स्पष्टता मिलती है, जो उसे धर्म के मार्ग पर सच्चाई से चलने में सहायक होती है।
- **"एतेषु स्थितिर्त्र, तत्र धर्मः सदा वर्तते"**: इसका अर्थ है कि जहाँ ये चार गुण—सत्य, तप, दया, और शौच—विद्यमान होते हैं, वहाँ धर्म की स्थापना होती है। इन गुणों का होना धर्म के वास्तविक अर्थ को स्थापित करता है। युधिष्ठिर के अनुसार, किसी भी समाज या राज्य में धर्म की उपस्थिति तभी मानी जा सकती है जब उसमें ये चार गुण प्रतिष्ठित हों।

यह श्लोक दर्शाता है कि धर्म केवल धार्मिक अनुष्ठानों का पालन नहीं है, बल्कि यह जीवन के उन मूलभूत गुणों पर आधारित है जो सत्य, तप, दया, और शुद्धता से जुड़े हैं। युधिष्ठिर का आदर्श जीवन इन चार गुणों से परिपूर्ण था, और उन्होंने समाज को भी इन आदर्शों को अपनाने के लिए प्रेरित किया। उनके अनुसार, जहाँ ये चार गुण होते हैं, वहाँ धर्म का सच्चा स्वरूप प्रकट होता है और समाज में शांति, संतुलन, और न्याय का वातावरण बना रहता है।

**"कर्मणैव हि संसिद्धिः, प्रेत्य विन्दन्ति साधवः।  
आत्मनात्मनि संयम्य, ब्रह्मरूपं समाश्रयेत्॥"**

इस श्लोक में जीवन के अंतिम लक्ष्य, अर्थात् मोक्ष, और उसके मार्ग के रूप में कर्मयोग और आत्मसंयम का वर्णन किया गया है। युधिष्ठिर के अनुसार, व्यक्ति अपने कर्तव्यों का निष्पादन कर और आत्मसंयम से अपनी आत्मा को शुद्ध करते हुए ब्रह्म की ओर अग्रसर हो सकता है। यह श्लोक कर्मयोग का आदर्श सिद्धांत प्रस्तुत करता है जिसमें मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्म और आत्मसंयम को महत्वपूर्ण साधन बताया गया है।

- **"कर्मणैव हि संसिद्धिः"**: इस पंक्ति का अर्थ है कि साधक अपने कर्मों के माध्यम से सिद्धि, अर्थात् पूर्णता, प्राप्त करता है। युधिष्ठिर मानते थे कि केवल कर्म ही व्यक्ति को मोक्ष के मार्ग पर ले जाते हैं। सही उद्देश्य और निःस्वार्थ भाव से किए गए कर्म व्यक्ति को उसकी आत्मा की पूर्णता की ओर अग्रसर करते हैं। उन्होंने जीवन में कर्मयोग का पालन किया और यह मानते थे कि व्यक्ति के कर्म ही उसे मुक्ति की ओर ले जाते हैं।
- **"प्रेत्य विन्दन्ति साधवः"**: इसका अर्थ है कि सच्चे साधक मृत्यु के पश्चात् भी अपनी सिद्धि को प्राप्त करते हैं। यह पंक्ति इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि जो व्यक्ति अपने जीवन में निष्काम कर्म और आत्मसंयम का पालन करता है, वह मृत्यु के बाद भी उस परम लक्ष्य, अर्थात् मोक्ष, को प्राप्त करता है। युधिष्ठिर का विचार था कि मृत्यु जीवन का अंत नहीं है; यदि व्यक्ति का जीवन धर्म और कर्म से परिपूर्ण हो तो वह आत्मा के सर्वोच्च लक्ष्य तक पहुँच सकता है।

- **"आत्मनात्मनि संयम्य"**: इसका अर्थ है कि आत्मा को आत्मसंयम द्वारा संयमित करना। आत्मसंयम का मतलब है कि व्यक्ति अपनी इंद्रियों और मन पर नियंत्रण रखे, जिससे वह अपने अंदर के शुद्धतम रूप को जान सके। आत्मसंयम से व्यक्ति मोह, लोभ, और अन्य नकारात्मक प्रवृत्तियों से मुक्त होकर अपने भीतर की दिव्यता का अनुभव करता है। युधिष्ठिर के लिए आत्मसंयम, आत्मज्ञान की ओर पहला कदम था।
- **"ब्रह्मरूपं समाश्रयेत्"**: इस अंतिम पंक्ति में कहा गया है कि आत्मसंयम और कर्मयोग के माध्यम से व्यक्ति ब्रह्मरूप का आश्रय लेता है, अर्थात् वह ब्रह्म के साथ एकरूपता प्राप्त करता है। ब्रह्मरूप को प्राप्त करना ही मोक्ष है, जहाँ आत्मा उस परम सत्य से एकाकार हो जाती है। युधिष्ठिर के अनुसार, जीवन का परम लक्ष्य आत्मा को ब्रह्म से मिलाना है, और यह लक्ष्य केवल कर्म और आत्मसंयम से ही प्राप्त हो सकता है।

इस श्लोक में युधिष्ठिर ने मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार, कर्म और आत्मसंयम मोक्ष प्राप्ति के दो महत्वपूर्ण साधन हैं। व्यक्ति अपने निष्काम कर्मों और आत्मसंयम के माध्यम से अपनी आत्मा को शुद्ध कर ब्रह्म से एकाकार हो सकता है। यह श्लोक इस बात का प्रमाण है कि युधिष्ठिर ने जीवन में कर्मयोग और आत्मसंयम को प्राथमिकता दी, और इन आदर्शों को अपनाकर अपने जीवन का अंतिम लक्ष्य प्राप्त करने की प्रेरणा दी।

**"वर्णाश्रमाचरविधानसंयुतं, यत्र धर्मो नित्यमेव प्रवर्तते।  
संयमं सत्त्वमदोषमेव तं, संप्रयच्छेदात्मसमाधिवर्धनम्॥"**

यह श्लोक उस समाज की संरचना और सांस्कृतिक मूल्यों को स्पष्ट करता है जो **वर्णाश्रमधर्म** पर आधारित था। युधिष्ठिर के अनुसार, समाज की स्थिरता और शांति के लिए वर्णाश्रमधर्म का पालन अत्यंत आवश्यक था, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म, स्थिति और उद्देश्य के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन करता था। इस श्लोक में संयम, शुद्धता, और दोष रहित जीवन के महत्व पर बल दिया गया है, जो आत्मा के विकास के लिए आवश्यक हैं।

- **"वर्णाश्रमाचरविधानसंयुतं"**: इस पंक्ति का अर्थ है कि व्यक्ति को अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार धर्म का पालन करना चाहिए। वर्णाश्रमधर्म समाज की संरचना का आधार था, जिसमें समाज को चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) और चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) में बांटा गया था। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के प्रत्येक चरण में निर्धारित कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, जिससे समाज में शांति और व्यवस्था बनी रहती है। युधिष्ठिर के अनुसार, समाज में धर्म की स्थिरता और शांति उसी समय होती है जब प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का सही ढंग से पालन करता है।
- **"यत्र धर्मो नित्यमेव प्रवर्तते"**: इसका अर्थ है कि जहाँ इन नियमों का पालन होता है, वहाँ धर्म सदा प्रवर्तित रहता है। युधिष्ठिर के अनुसार, यदि समाज में लोग अपने कर्तव्यों और धर्म का पालन करते हैं, तो समाज में सदा धर्म और शांति बनी रहती है। धर्म के निरंतर प्रवर्तित होने से समाज में संतुलन और एकता बनी रहती है, और यह समाज को स्थिरता प्रदान करता है।
- **"संयमं सत्त्वमदोषमेव तं"**: इस पंक्ति में संयम, सत्त्व (शुद्धता) और दोष रहित जीवन की बात की गई है। युधिष्ठिर का मानना था कि व्यक्ति को अपने जीवन में संयम और आत्म-नियंत्रण रखना चाहिए। शुद्धता और दोष रहित जीवन से व्यक्ति के मन और आत्मा की उन्नति होती है। जब व्यक्ति अपने कर्मों में सच्चाई और ईमानदारी को अपनाता है, तो वह आत्मविकास की ओर अग्रसर होता है।
- **"संप्रयच्छेदात्मसमाधिवर्धनम्"**: इसका अर्थ है कि संयम और शुद्धता से आत्मा की समाधि और समृद्धि का विकास होता है। युधिष्ठिर के अनुसार, जब व्यक्ति अपने मन और इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है, तब आत्मा की शांति और समृद्धि होती है। यह आत्मा के लिए समाधि की स्थिति को प्राप्त करने का मार्ग है, जो उसकी आध्यात्मिक उन्नति का प्रतीक है।

यह श्लोक स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि **वर्णाश्रमधर्म** का पालन समाज की स्थिरता, शांति, और विकास के लिए महत्वपूर्ण था। युधिष्ठिर के अनुसार, संयम, शुद्धता, और दोष रहित जीवन से व्यक्ति अपने आत्मविकास की ओर अग्रसर होता है और समाज

में धर्म और शांति स्थापित होती है। इस प्रकार, समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने धर्म और कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, ताकि समाज में संतुलन और समृद्धि बनी रहे।

**"धर्मेण होव मनुष्याणां शान्तिरष्टाश्रमेण च।  
यज्ञदानतपःकर्मैः, कृतकृत्यं भवत्यतः॥"**

इस श्लोक में धर्म की महत्ता को स्पष्ट रूप से बताया गया है। युधिष्ठिर के अनुसार, धर्म का पालन न केवल समाज में शांति और संतुलन बनाए रखता है, बल्कि आत्मिक शांति और संतुष्टि भी प्रदान करता है। इस श्लोक में यज्ञ, दान, तप, और आचार के माध्यम से शांति की प्राप्ति के बारे में बताया गया है, जो व्यक्ति को धर्म के अनुसार जीवन जीने के लिए प्रेरित करते हैं।

- **"धर्मेण होव मनुष्याणां शान्तिरष्टाश्रमेण च"**: इस पंक्ति का अर्थ है कि केवल धर्म का पालन करने से मनुष्यों को शांति और संतुष्टि प्राप्त होती है। धर्म वह मार्ग है, जो व्यक्ति को सही दिशा दिखाता है और शांति की प्राप्ति के लिए एक स्थिर आधार प्रदान करता है। युधिष्ठिर के अनुसार, जब व्यक्ति अपने जीवन को धर्म के अनुसार जीता है, तो उसे मानसिक और आत्मिक शांति मिलती है। धर्म का पालन सामाजिक, नैतिक, और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी आवश्यक है, ताकि समाज में शांति बनी रहे।
- **"यज्ञदानतपःकर्मैः"**: इस पंक्ति में यज्ञ, दान, तप, और कर्म का उल्लेख किया गया है। युधिष्ठिर के अनुसार, ये चार क्रियाएँ धर्म के पालन में प्रमुख भूमिका निभाती हैं।
  - **यज्ञ**: यज्ञ समाज और प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाए रखने का एक साधन है।
  - **दान**: दान से व्यक्ति न केवल दूसरों की सहायता करता है, बल्कि अपनी आत्मा की शुद्धि और संतोष भी प्राप्त करता है।
  - **तप**: तप का अर्थ है आत्म-संयम और साधना, जिससे व्यक्ति अपने जीवन में संयम और पवित्रता लाता है।
  - **कर्म**: निष्काम कर्म से व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करता है और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभाता है।
- **"कृतकृत्यं भवत्यतः"**: इसका अर्थ है कि यज्ञ, दान, तप, और कर्म के माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन में किए गए कार्यों को पूर्ण करता है। जब व्यक्ति धर्म के अनुसार जीवन जीता है, तो उसके कार्य सिद्ध और संपन्न होते हैं। उसे किसी प्रकार की कोई कमी या पछतावा नहीं होता, क्योंकि उसने अपनी जिम्मेदारियाँ पूरी तरह से निभाई होती हैं। युधिष्ठिर स्वयं धर्मराज कहलाते थे, क्योंकि उन्होंने धर्म के अनुसार अपने सभी कार्यों को संपन्न किया और अपने कर्तव्यों को निभाया।

इस श्लोक में युधिष्ठिर ने यह स्पष्ट किया है कि धर्म का पालन न केवल समाज में शांति लाता है, बल्कि व्यक्ति को आत्मिक संतोष और शांति भी प्रदान करता है। यज्ञ, दान, तप, और कर्म के माध्यम से व्यक्ति अपने कर्तव्यों का सही तरीके से पालन करता है और अंततः अपने जीवन को कृतकृत्य (पूर्ण) बना लेता है। युधिष्ठिर का जीवन इस श्लोक का आदर्श उदाहरण है, क्योंकि उन्होंने हमेशा धर्म के मार्ग पर चलकर अपनी जिम्मेदारियाँ निभाई और समाज में शांति स्थापित की।

**"धर्मस्य स्थायिनी शक्तिः शान्तिं सुखं जीवनं च यः।  
यः संप्राप्तो न शङ्केत, धर्मात्मा स च युधिष्ठिरः॥"**

यह श्लोक युधिष्ठिर के जीवन की प्रमुख विशेषताओं और उनके धर्म के प्रति दृढ़ निष्ठा को व्यक्त करता है। युधिष्ठिर को धर्मात्मा के रूप में जाना जाता था और उनका जीवन धर्म के आदर्शों पर आधारित था। इस श्लोक में धर्म की स्थायिनी शक्ति, शांति और सुख के बारे में बताया गया है।

#### 1. "धर्मस्य स्थायिनी शक्तिः"

इस पंक्ति का अर्थ है कि धर्म ही जीवन की स्थायिनी (स्थिर) शक्ति है। युधिष्ठिर के जीवन में धर्म का पालन उनकी शक्ति और स्थिरता का मुख्य कारण था। धर्म केवल एक नैतिक आदर्श नहीं था, बल्कि यह उनके जीवन का आधार था, जो

उन्हें हर परिस्थिति में मार्गदर्शन करता था। धर्म की यह स्थायिनी शक्ति उन्हें संकटों में भी साहस और शांति प्रदान करती थी।

2. "शान्ति सुखं जीवनं च यः"

यहाँ यह कहा गया है कि जो व्यक्ति धर्म का पालन करता है, वह शांति और सुख की प्राप्ति करता है। युधिष्ठिर का जीवन इस बात का आदर्श था कि धर्म के मार्ग पर चलने से व्यक्ति को न केवल मानसिक शांति मिलती है, बल्कि उसे सुख भी प्राप्त होता है। युधिष्ठिर ने हमेशा धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत किया, और उनके जीवन में शांति और सुख का अभाव कभी नहीं था।

3. "यः संप्राप्तो न शङ्केत"

यह पंक्ति यह बताती है कि धर्म के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति किसी भी प्रकार की संकोच या शंका से मुक्त रहता है। युधिष्ठिर के अनुसार, जब कोई व्यक्ति धर्म के अनुसार कार्य करता है, तो उसे किसी भी कठिनाई या चुनौती का सामना करने में कोई भय नहीं होता। धर्म के पालन से व्यक्ति का आत्मविश्वास और साहस बढ़ता है।

4. "धर्मात्मा स च युधिष्ठिरः"

इस पंक्ति में यह कहा गया है कि युधिष्ठिर एक धर्मात्मा थे, क्योंकि उनके सारे कार्य धर्म के अनुसार होते थे। युधिष्ठिर का जीवन अपने आप में एक आदर्श था, जिसमें उन्होंने हमेशा धर्म, सत्य और न्याय का पालन किया। वे अपने कर्तव्यों में सदैव निष्ठावान रहते थे और उनका जीवन धर्म के मूल सिद्धांतों से प्रेरित था।

यह श्लोक युधिष्ठिर के जीवन के आदर्श को स्पष्ट करता है कि धर्म का पालन करने से न केवल आत्मिक संतोष और शांति प्राप्त होती है, बल्कि व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में संकोच या भय का सामना नहीं करता। धर्म के अनुसार जीवन जीने से व्यक्ति में आंतरिक शक्ति और स्थिरता आती है, जो उसे जीवन के संघर्षों से उबरने की क्षमता प्रदान करती है। युधिष्ठिर का जीवन यह दर्शाता है कि धर्म ही जीवन का सर्वोत्तम मार्ग है, जो व्यक्ति को शांति, सुख और स्थायित्व प्रदान करता है।

**"धर्मेण धर्मपालिता राज्यं प्रजासुखं नयेत्।  
धर्मस्य प्रकाशनं, तस्य साक्षात् पालनं च हि ॥"**

इस श्लोक में युधिष्ठिर ने राजा के कर्तव्यों और उसके धर्म के पालन की महिमा को स्पष्ट किया है। युधिष्ठिर के अनुसार, एक राजा का मुख्य कार्य केवल अपने राज्य का शासन करना नहीं, बल्कि धर्म का पालन करना और धर्म के अनुसार अपने राज्य में शांति और समृद्धि स्थापित करना है।

1. "धर्मेण धर्मपालिता राज्यं प्रजासुखं नयेत्"

इस पंक्ति का अर्थ है कि धर्म का पालन करके राजा अपने राज्य में सुख और समृद्धि की प्राप्ति सुनिश्चित करता है। युधिष्ठिर का मानना था कि धर्म ही वह आधार है, जिसके द्वारा राजा अपने राज्य का सही दिशा में संचालन कर सकता है। धर्म के अनुसार शासन करने से न केवल राजा को, बल्कि उसकी प्रजा को भी सुख और समृद्धि प्राप्त होती है। राजा का कर्तव्य होता है कि वह धर्म की स्थापना करके प्रजा की भलाई सुनिश्चित करे, जिससे राज्य में शांति और समृद्धि बनी रहे।

2. "धर्मस्य प्रकाशनं, तस्य साक्षात् पालनं च हि"

इस पंक्ति में युधिष्ठिर ने बताया है कि राजा को धर्म का प्रचार करना चाहिए और स्वयं भी धर्म का पालन करना चाहिए। धर्म का प्रचार करने से समाज में धार्मिक मूल्यों की वृद्धि होती है, और लोग भी धर्म के अनुसार अपने कार्यों को सही ढंग से करते हैं। युधिष्ठिर के अनुसार, धर्म का पालन करने से राजा और प्रजा दोनों ही अपने जीवन को सत्य, न्याय और शांति के मार्ग पर चला सकते हैं। राजा को धर्म के अनुसार शासन करना चाहिए ताकि उसकी प्रजा भी सही मार्ग पर चले और राज्य में सुख-संतोष और समृद्धि बनी रहे।

यह श्लोक यह स्पष्ट करता है कि एक राजा का मुख्य कर्तव्य धर्म का पालन करना और उसके अनुसार शासन करना है। धर्म के माध्यम से राजा अपने राज्य में शांति और सुख सुनिश्चित कर सकता है। युधिष्ठिर का जीवन और उनके विचार हमें यह सिखाते हैं कि राज्य की प्रजा की भलाई और राज्य की समृद्धि धर्म के पालन से ही सुनिश्चित होती है। एक राजा का कार्य केवल शासक बनकर शासन करना नहीं, बल्कि धर्म का प्रचार और पालन करके समाज में सुख और समृद्धि लाना है।

**"यत्र धर्मो न पालयते, तत्र सर्वे दुष्कृतास्तु।  
राज्यं च धर्मसम्पन्नं, सुखं यत्र न विस्मृते ॥"**

इस श्लोक में युधिष्ठिर ने धर्म के पालन के महत्व को स्पष्ट करते हुए बताया है कि जहाँ धर्म का पालन नहीं होता, वहाँ समाज में अशांति और दुष्कर्मों का वास होता है। युधिष्ठिर के अनुसार, धर्म ही राज्य की समृद्धि, सुख और शांति का आधार है। जब धर्म का पालन होता है, तब न केवल राज्य की स्थिति स्थिर और सुखद होती है, बल्कि प्रजा भी अपने जीवन में संतुष्टि और समृद्धि अनुभव करती है।

#### 1. "यत्र धर्मो न पालयते, तत्र सर्वे दुष्कृतास्तु"

इस पंक्ति में युधिष्ठिर ने यह कहा है कि जहाँ धर्म का पालन नहीं होता, वहाँ दुष्कर्मों का वास होता है। जब समाज में लोग धर्म का त्याग कर देते हैं, तो वे अपने कर्मों में अधर्म को स्थान देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप समाज में अपराध और अशांति बढ़ती है। युधिष्ठिर का मानना था कि धर्म के अभाव में समाज में नकारात्मकता और असंतोष का जन्म होता है, जिससे न केवल राज्य, बल्कि प्रजा भी कष्ट भुगतती है।

#### 2. "राज्यं च धर्मसम्पन्नं, सुखं यत्र न विस्मृते"

यहाँ युधिष्ठिर ने यह कहा है कि यदि राज्य धर्म से सम्पन्न होता है, तो राज्य में सुख और शांति बनी रहती है। धर्म का पालन करते हुए, राजा और प्रजा दोनों ही अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं, जिससे राज्य में समृद्धि और शांति का वातावरण बनता है। इस पंक्ति में यह भी स्पष्ट किया गया है कि धर्म ही राज्य के प्रशासन की नींव होता है, और जब राज्य में धर्म का पालन होता है, तो वहाँ खुशहाली और संतुष्टि हमेशा बनी रहती है।

यह श्लोक हमें यह सिखाता है कि धर्म का पालन राज्य की शांति, समृद्धि और समाज के सुख के लिए आवश्यक है। युधिष्ठिर का मानना था कि जब धर्म का पालन होता है, तो न केवल राजा बल्कि प्रजा भी सुखी रहती है, और समाज में शांति बनी रहती है। इसके विपरीत, धर्म के अभाव में समाज में अशांति, अपराध और दुष्कर्मों का विकास होता है। इसलिए, राज्य के लिए धर्म का पालन अत्यंत महत्वपूर्ण है, ताकि प्रजा का कल्याण और राज्य की समृद्धि सुनिश्चित की जा सके।

#### संदर्भ:

1. महाभारत (अनुवाद: सी. राजगोपालाचारी), भारतीय विद्या भवन, 2001।
2. मनुस्मृति (अनुवाद: जी. एम. नागी), मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2010।
3. शास्त्री, एस. के. धर्म और शासन: युधिष्ठिर के शासन के सिद्धांतों का अध्ययन, विद्या प्रकाशन, 2007।
4. पांडेय, आर. के. युधिष्ठिर और धर्म: महाभारत में धर्म का अनुसरण, कावरी बुक्स, 2015।



5. नारायण, आर. के. *महाभारत: एक आधुनिक पुनःकथन*, पैग्विन बुक्स, 2008।
6. वेलंकर, एम. आर. *भगवद गीता: इसका दार्शनिक, नैतिक और राजनीतिक आयाम*, पुस्तक महल, 2000।
7. स्मिथ, डब्ल्यू. *प्राचीन भारत में दार्शनिकता और नैतिकता*, रूटलेज, 2002।
8. शर्मा, सी. एल. *प्राचीन भारतीय साहित्य में धर्म का सिद्धांत*, न्यू एज इंटरनेशनल, 2004।
9. मल्होत्रा, आर. *युधिष्ठिर का धर्मराज के रूप में योगदान*, भारतीय सांस्कृतिक इतिहास पत्रिका, 2010।
10. प्रसाद, एस. *महाभारत में राजा के रूप में नैतिकता*, ओरिएंट लॉन्गमैन, 1999।
11. चट्टोपाध्याय, बी. *प्राचीन भारत में धर्म और राजनीति*, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2012।
12. झा, एस. के. *प्राचीन भारत में धर्म और सामाजिक नैतिकता*, मुंशी राम मनोहरलाल पब्लिशर्स, 2003।
13. कपूर, ए. *राजा युधिष्ठिर और शासन कला*, अभिनव पब्लिकेशन्स, 2011।
14. घोष, ए. *महाभारत में धर्म और शासन का योगदान*, कलकत्ता विश्वविद्यालय प्रेस, 2018।
15. शर्मा, बी. के. *वैदिक न्याय और धर्म के सिद्धांत*, आर्य पब्लिकेशन्स, 2006।
16. मिश्र, के. *प्राचीन भारत में धर्म और राजधर्म*, केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, 2014।
17. राव, आर. *महाभारत में युधिष्ठिर का धर्म और राजधर्म*, प्राचीन भारतीय इतिहास पत्रिका, 2009।
18. भट्टाचार्य, डी. *प्राचीन भारतीय ग्रंथों में धर्म का सिद्धांत*, श्री सतगुरु पब्लिकेशन्स, 2010।
19. गिरी, डी. *महाभारत में न्याय का सिद्धांत*, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2001।
20. राघवन, एम. *प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन: युधिष्ठिर का उदाहरण*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2016।